International Journal of Applied Research 2016; 2(1): 1015-1017

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(1): 1015-1017
www.allresearchjournal.com
Received: 13-12-2015
Accepted: 18-01-2016

डा0 अनन्त कुमार यादव
अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग
इन्स्टीट्यूट ऑफ ओरियन्टल
फिलोसोफी वृन्दावन (मथुरा),
उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डा0 अनन्त कुमार यादव
अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग
इन्स्टीट्यूट ऑफ ओरियन्टल
फिलोसोफी वृन्दावन (मथुरा),
उत्तर प्रदेश, भारत

अपोहवाद का तार्किक और गणितीय आधार

डा0 अनन्त कुमार यादव

सारांशः
अपोहवाद बौद्धदर्शन के ज्ञानमीमांसीय सिद्धान्तों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। वस्तुतः बौद्ध दर्शन के केन्द्रीय तत्वमीमांसीय सिद्धान्त अनित्यवाद, क्षणिकवाद, अनात्मवाद, दुःखवाद और प्रतीत्यसमुत्पाद को वैचारिक व सुसंगत ज्ञानमीमांसीय आधार देने के लिये अपोहवाद की महती आवश्यकता है। वास्तव में अनित्यवाद व क्षणिकवाद की स्थापना में बौद्धों के समक्ष सबसे बड़ी रूकावट जाति या सामान्य का सिद्धान्त था। यही कारण है कि उन्हें जाति या सामान्य का खण्डन करना एक तार्किक आवश्यकता है, परन्तु जनसामान्य अनेक वस्तुओं में जो एकता का दर्शन करता है, उसका समाधान किये बिना जाति या सामान्य का खण्डन करना भी उचित नही है। परिणामस्वरूप बौद्धो ने एक ऐसे सिद्धान्त का प्रवर्तन किया जो एक तरफ जाति या सामान्य का निरसन करता है और वहीं दूसरी तरफ इससे अनेक वस्तुओं में एकता का विश्लेषण भी कर देता है। इसी को उन्होनें 'अपोह' कहा है। प्रस्तुत शोध पत्र में मैं यह दिखाने का प्रयास किया है कि बौद्धों का यह अपोहवाद सिद्धान्त तार्किक ही नही हैं बल्कि इसका ठोस एक गणितीय आधार भी है। सामान्य गणित का द्विनिषेधात्मक सिद्धान्त (Double Negation Theory) और समुच्चय सिद्धान्त का पूरक सिद्धान्त (Complement Theory) अपोहवाद को ठोस गणितीय आधार प्रदान करता है। यही इस शोध–पत्र की दार्शनिक विशिष्टता है।

कूटशब्द : परिणामस्वरूप, ठोस, सिद्धान्त

प्रस्तावनाः
बौद्ध दर्शन में अपोहवाद का सर्वप्रथम विधिवत प्रतिपादन दिङ्नाग ने अपने ग्रन्थ 'प्रमाण समुच्चय' में किया है। तद्पश्चात प्रमाणवार्तिक में धर्मकीर्ति ने अपोहवाद का विश्लेषण किया और उसके बाद रत्नकीर्ति ने अपोहवाद पर लगें आक्षेपो का निराकरण करते हुये इसे पर्याप्त संशोधित रूप में प्रस्तुत किया। इसप्रकार बौद्ध आचार्यो की परम्परा में अपोह का लक्ष्य एक ही अर्थात् जाति या सामान्य का खण्डन रहा किन्तु कालक्रम के अनुसार उसकी परिभाषाओं में संशोधन होते रहे। दिङ्नाग के अनुसार अपोह का अर्थ है :– "अन्य सर्व प्राणियों की व्यावृत्ति के बाद सम्बद्ध वस्तु का अनुमान से ज्ञान"। शांतरक्षित के विचार में शब्द वस्तु का निर्देश करते है और अन्य वस्तुओं से उनकी व्यावृत्ति अनुमान से होती हैं। जबकि रत्नकीर्ति का यह मत है कि शब्दों में संकेतित पदार्थ का निर्देश और अन्य वस्तुओं से उनकी व्यावृत्ति अर्थात् विधि और निषेध दोनो साथ–साथ ही होते है। उल्लेखनीय है कि रत्नकीर्ति के इसमत को विशिष्टापोह कहा जाता है।[1]
ध्यातव्य है कि दिङ्नाग के अनुसार शब्द, सम्प्रत्यय और नाम किसी वस्तु के अस्तित्व का बोध नही कराते। हम मिथ्या धारणावश यह सोचते है कि उनसे किसी वस्तु का बोध होता है। वस्तुतः वे प्रतिषेध–मूलक है और किसी वस्तु के अस्तित्व का संकेत उस वस्तु से भिन्न वस्तुओं का निषेध करके करते है।[2] उदाहरण के लिये जब हम 'गाय' शब्द कहते है तो उससे 'गाय' का बोध नही होता बल्कि "अगाय नही है" का बोध होता है। इसप्रकार नाम या शब्द किसी वस्तु का भावपूर्ण बोध न कराके तद्भिन्न से उसकी व्यावृत्ति का ज्ञान कराते है, जैसे मनुष्य वह है जो अमनुष्य न हो। उल्लेखनीय है कि दिङ्नाग का यह चिन्तन सामान्य गणित के द्विनिषेधात्मक सिद्धान्त (Double Negation Theory) से साम्य रखता है। दूसरे शब्दों में कहे तो दिङ्नाग के इस ज्ञानमीमांसीय सिद्धान्त 'अपोहवाद' को सामान्य गणित का द्विनिषेधात्मक सिद्धान्त ठोस वैचारिक व तार्किक आधार प्रदान करता है। इसे इसप्रकार समझ सकते हैः–
जैसे – सामान्य गणित के द्विनिषेधात्मक सिद्धान्त को इस प्रकार व्यक्त करते हैः–

$A = -(-A)$

यदि A= गाय को सूचित करे तो, उपर्युक्त सूत्र निम्न प्रकार व्यक्त होगा

गाय = - (-गाय)
गाय = नही (अ गाय)
गाय = "अगाय नही"
स्पष्ट है गणित के (–) को भाषा में 'नही' या 'अ' के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। इसी प्रकार दिड़नाग के विचार को उच्चगणित के समुच्चय सिद्धान्त (Set Theory) के पूरक सिद्धान्त (Comnplementry Theory) से भी वैचारिक आधार प्राप्त होता है। पूरक सिद्धान्त में इसे इसप्रकार व्यक्त किया जा सकता हैः–

$(A')' = A$, अर्थात्

Complement of (Complement of A) = A
A = को गाय मानने पर इसे इस प्रकार दर्शाया जा सकता है :–
(A')' = A
(अ गाय)' = गाय
अगाय नही = गाय

इसे निम्न रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैः–

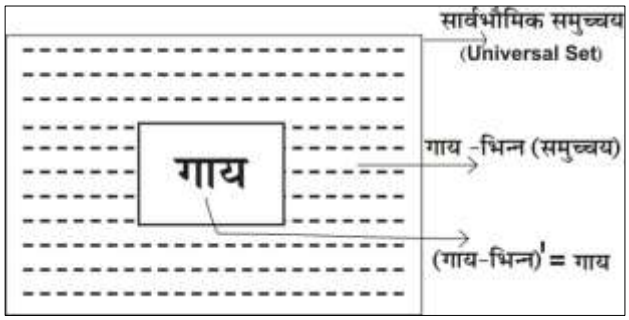

इस प्रकार "गाय अगाय नही है" सामान्य गणित और उच्च गणित के समुच्चय सिद्धान्त से भी समर्थित है। अर्थात् दिड़नाग का अपोहवाद सामान्य गणित, उच्चगणित (समुच्चय सिद्धान्त) और तर्कशास्त्र तीनों से वैचारिक आधार व समर्थन प्राप्त करता है।
उल्लेखनीय है कि बौद्धो के अनुसार संसार की प्रत्येक वस्तु एक दूसरे से भिन्न है। ऐसी कोई भी दो वस्तुऐं नहीं बतायी जा सकती जो पूर्णतया एक रूप हो। किन्तु कुछ वस्तुऐं ऐसी है जो अन्य वस्तुओं की अपेक्षा एक दूसरे से अधिक मिलती–जुलती है। जब हम इन वस्तुओं की अन्य वस्तुओं से तुलना करते है तो हमे ऐसा प्रतीत होता है कि ये एक जाति की है अथवा कोई सामान्य तत्व हैं जो इन सभी सदृश वस्तुओं में विद्यमान है। वस्तुतः इस सामान्य तत्व की कल्पना की उत्पत्ति वस्तुओं के बीच भेद की उपेक्षा के कारण होती है। जैसे – हम गाय, अश्व, सिंह, वृक्ष, मकान इत्यादि देखते है। यद्यपि गाय, अश्व और सिंह एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है, तथापि वृक्ष और मकान आदि की तुलना में, एक दूसरे से अधिक समानता रखते है। इसीलिये हम उन्हें एक जाति–'पशु' के अन्दर रखते है, परन्तु पशु जैसा किसी सामान्य की वास्तविक सत्ता नहीं है, यह कल्पित है। इसे ही भेदाग्रह, अपोह, अन्यव्यावृत्ति या अतद्व्यावृत्ति का सिद्धान्त कहते है।[3] ध्यातव्य है कि नैयायिक के अनुसार सामान्य या जाति एक विध्यात्मक और वास्तविक सत्ता है जो समवाय सम्बन्ध के माध्यम से अपने वर्ग की प्रत्येक वस्तु में सामान्य के रूप में विद्यमान है। जबकि इसके ठीक विपरीत बौद्धौ का अपोह प्रतिषेधात्मक और कल्पित प्रत्यय है जिनसे वस्तुओं के सादृश्य का बोध होता है और यह सादृश्य अधिक भिन्न वस्तुओं की तुलना में कम–भिन्न–वस्तुओं की भिन्नता की उपेक्षा में निहित है। इन्हें हम प्रतिषेधात्मक कह सकते है।[4]
जैसा कि हम जानते है कि पाश्चात्य दार्शनिक हेगल के अनुसार निषेध निरपेक्ष तत्व है। यह परमतत्व का स्वभाव है जबकि बौद्ध–विज्ञानवादियों के अुनसार निषेध सापेक्ष है और स्वलक्षण इसका आश्रय है। ध्यातव्य है कि पेलेगी, जानस्टुअर्ट मिल थामस कैम्पेनला आदि आधुनिक तर्कशास्त्री भी इसी निष्कर्ष पर पहुचें है कि प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व अन्य वस्तुओं की व्यावृत्ति में है। पेलेगी के अनुसार जैसे ही हम चिन्तन प्रारंभ करते है और अपने भावों को शब्दों द्वारा व्यक्त करने का प्रयत्न करते है, वैसे ही हमारा वर्ण्य विषय व्यावृत्त्यात्मक हो जाता है और विचार प्रतिषेधात्मक।[5] इसीप्रकार जान स्टुअर्ट मिल के अनुसार विधि दर्शन में "सिविल" (नागरिक) शब्द का उच्चाचरण करते ही अपराधी, सैनिक, राजनैतिक तथा धर्मशास्त्रीय अर्थो का निषेध हो जाता है। जब कि थामस कैम्पेनला सुस्पष्ट शब्दों में कहते है कि मनुष्य इसलिये है कि वह पत्थर, सिंह, गर्दभ (गधा) आदि नही है।[6] उल्लेखनीय है कि आधुनिक युग के तार्किक भाववादियो के सामान्य सिद्धान्त से भी अपोहवाद कुछ समानता रखता है। किन्तु दोनों में अन्तर इस बात में है कि बौद्ध विज्ञानवादी इस बात पर दृढ़ है कि अपोह प्रतिषेधात्मक है किन्तु तार्किक भाववादियाँ और पाश्चात्य नामवादियों के अनुसार सामान्य विध्यात्मक हैं। अपने इसी विध्यात्मक दृष्टिकोण के कारण वे वस्तुवाद का खण्डन करने में असफल रहें। यदि सामान्य विध्यात्मक सताएँ है तो उनका खण्डन वदतो–व्याघात है। किन्तु बौद्ध विज्ञानवादी इस दोष से मुक्त है, इसीलिये वे वस्तुवाद का सफलतापूर्वक खण्डन कर सकें।[7]
ज्ञातव्य है कि शांतरक्षित ने अपोह के दो भेद मानते हैः
(i) पर्युदास (सापेक्ष अभाव) (ii) प्रसज्य प्रतिषेध (आत्यन्तिक अभाव)।
इन्होनें 'पर्युदास' के भी दो भेद बतायें है –
(a) बुद्ध्यात्मन् (प्रत्यय भेद पर आधारित)
(b) अर्थात्मन् (वस्तुभेद पर आधारित)

स्पष्ट है कि बुद्ध्यात्मन ही वास्तविक अपोह है। यहीं किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब उत्पन्न कर वास्तविक वस्तु की भ्रान्ति को जन्म देता है। अप्रत्यक्ष रूप से इसी के द्वारा अन्य वस्तुओं की व्यावृत्ति भी हो जाती है। अर्थात्मन को हम वास्तविक अर्थ में अपोह नही कह सकते। इसे हम अपोह केवल इस अर्थ में कह सकते हैं कि यह सभी वस्तुओं से व्यावृत्त रूप में प्रकट होता है और अपोह का आधार है। वस्तुतः यह अनभिलाप्य है।
वास्तव में 'अपोह' आचार्य दिड़्नाग की एक बहुत ही महत्वपूर्ण उपलिब्ध है। बौद्ध विज्ञानवाद की ज्ञानमीमांसा के लिये यह नितान्त आवश्यक है। बुद्धि इसी की सहायता से निर्विकल्प संवेदनो से एक वास्तविक जगत की भ्रान्ति को जन्म देती है। इसे इस प्रकार समझ सकते हैः– सर्वप्रथम हम किसी विशेष वस्तु, उदाहरण के लिये एक गाय का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। इससे हमारे मस्तिष्क में एक ऐसे प्रतिबिम्ब का आविर्भाव होता है, जो उन प्रतिबिम्बों के समान है जो उस प्रकार की अन्य गायों को देखने से उत्पन्न हुये थे। चूँकि ये प्रतिबिम्ब एक ही साथ नही उत्पन्न हुये थे, इसलिये बुद्धि इनके भेद को नही ग्रहण कर पाती और उन्हें एक रूप मान लेती है। तदन्तर हम यह सोचने लगते है कि चूँकि प्रतिबिम्ब एक रूप है, अतः इनके आधार निर्विकल्प संवेदन भी एक रूप होगें और उनके मूल स्वलक्षण भी एक रूप होंगे। परिणामस्वरूप कल्पित जाति या सामान्य का जन्म और अनुभवसिद्ध जगत की सृष्टि होती है।[8] इस प्रकार एक अनुभवसिद्ध जगत की भ्रान्ति जन्म लेती है तथा इस बुद्धिगम्य जगत का भाषा द्वारा निर्वचन भी सम्भव हो पाता है।
किन्तु कुछ दार्शनिकों ने विशेषकर बौद्धेत्तर शास्त्रकारों ने अपोहवाद का खण्डन किया है। मीमांसकों और नैयायिको ने दो आधारो पर अपोहवाद का खण्डन किया। पहला जाति या सामान्य के अस्तित्व का प्रतिपादन करके और दूसरा बौद्धो द्वारा अपोह के समर्थन में दिये गये तर्को का खण्डन करके।[9] कुमारिल भट्ट, उद्योतकर, भामह, जयन्त भट्, वाचस्पति मिश्र तथा श्रीधर आदि ने अपोहवाद की आलोचना की है। कुमारिल का कहना है कि

सर्वप्रथम हमे 'गाय' के स्वरूप की स्थापना करनी चाहिये, नही तो अन्योन्याश्रय दोष उत्पन्न हो जायेगा। जबकि आचार्य भामह के अनुसार अपोहवाद मानव के दैनिक अनुभव के विपरीत है। दैनिक जीवन में हमे किसी भी शब्द से उसके भावात्मक स्वरूप का ज्ञान होता है। जबकि जयन्तभट्ट का कहना है कि यदि बौद्धौ की सामान्य विषयक अवधारणा स्वीकार करके यह मान भी लिया जाय कि सामान्य एक वैचारिक गल्प है तो अनुमान और शब्दज्ञान तर्कतः असम्भव हो जायेगा। इसके उत्तर में बौद्धो का कहना है कि 'सामान्य' व्यक्ति के मन कि स्वैच्छिक संरचना नही है (गल्प नही) बल्कि मनुष्य के मन में अन्तर्निहित सम्प्रत्यात्मक संरचना की नैसर्गिक प्रवृत्तियों की उत्पत्ति है। बौद्धो का यह दृष्टिकोण सामान्यों को काल्पनिक वस्तुओं से पृथक करता है। इसीप्रकार प्रत्युत्तर में आचार्य कमलशील कहते है कि अपोह में वस्तु के विधि मूलक बोध के साथ ही उसका दूसरी वस्तुओं से व्यावृत्ति के रूप में निषेधमूलक ज्ञान भी होता है। इन समस्त विवेचनाओं से ध्वनित होता है कि अपोहवाद की आलोचनाओ में ठोस सार नही है, बल्कि बौद्धौ का अपोहवाद उनकी तत्वमीमांसा को ठोस सुसंगत आधार प्रदान करता है। वस्तुतः अपोहवाद बौद्धदर्शन विशेषकर बौद्ध–विज्ञानवाद को वह तार्किक आधार प्रदान करता है जिससे उनकी ज्ञानमीमांसा और तत्वमीमांसा में एक सुसंगति दिखायी पड़ती है। उल्लेखनीय है कि दिङ्नाग का अपोहवाद बौद्धदर्शन का अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है और इस सिद्धान्त का सशक्त वैचारिक व तार्किक आधार के साथ–साथ ठोस गणितीय आधार भी है, जो इसे विशिष्टता प्रदान करता हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय न्याय शास्त्र – डॉ0 चक्रधर विजल्वान, पृष्ठ – 375
2. प्रमाण समुच्चय, 5/1
3. भारतीय दर्शन – डा0 नन्द किशोर देवराज, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान लखनऊ, पृष्ठ 245
4. भारतीय दर्शन – डा0 नन्द किशोर देवराज, उ0प्र0 हिन्दी साहित्य लखनऊ, पृष्ठ 246
5. बुद्धिस्ट लाजिक, भाग– 1 पृष्ठ – 487
6. बुद्धिस्ट लोजिक ,भाग– 1, पृष्ठ – 490
7. भारतीय दर्शन – डा0 नन्दकिशोर देवराज, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान लखनऊ, पृष्ठ – 246
8. भारतीय दर्शन – डॉ0 नन्दकिशोर देवराज, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान लखनऊ, पृष्ठ – 247
9. भारतीय न्याय शास्त्र – डा0 चक्रधर विजल्वान, पृष्ठ –375